ॐ REGD. NO. L. 2077

वर्ष १] अङ्क ६]

भक्ति

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

भगवद्भक्ति विहीनानां शास्त्र गर्तेषु मुह्यताम् ।
न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात् तेषां जन्म शतैरपि ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

सम्पादक—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती ।

निम्न लिखित महानुभाओं ने भक्ति के संरक्षक बन कर भक्ति को अपनाने की कृपा की है।

१. राव बहादुर लेफ्टेनेन्ट राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा ५१)

२. राव श्रीराम रईस नांगल २५)

३. म० शोभाराम जी डूंगरवास २५)

४. चौ० धर्मसिंह जी मलिक नायब तहसीलदार रेवाड़ी २५)

५. राव निहालसिंह जी सूबेदार पान्हावास २५)

६. बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्ज़ पटना यू० पी०। २५)

ॐ

"कर्त्तानु केवला भक्तिः"।

वार्षिक चन्दा २)

एक प्रति का ।)

भक्ति

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जागृत करने वाली मासिक पत्रिका।

वर्ष १ } भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा, फाल्गुण पूर्णिमा सं० १९८३। { अङ्क ६

॥ मंगलाचरणम् ॥

यो दृष्टो मखमण्डपे सुरगणैः श्रीवामनः सामगः।
सामोद्गीत कुतूहलः सुरगणैस्त्रैलोक्य एकः प्रभुः॥
कुर्वन्तं नयनेक्षणैः शुभकरैः निष्पाप तां तद्बलेः।
तस्याहं चरणारविन्दयुगलं वन्दे परं पावनम्॥ १॥

जिन श्री वामन स्वरूप भगवान् को देवताओं ने यज्ञ के मण्डप में देखा, जो सामगान में तत्पर थे और जिनको सामगान का कुतूहल था, जो तीनों लोकों के एक प्रभु हैं, जिन्होंने अपनी पवित्र दृष्टि से बलि राजा को निष्पाप कर दिया उनके परम पवित्र युगल चरणारविन्द को नमस्कार करता हूं॥ १॥

विश्वं दर्पण दृश्यमान नगरी तुल्यं निजान्तर्गतं ।
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ।
यःसाक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं ।
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नमः इदं श्री दक्षिणा मूर्तये ॥ २ ॥

जैसे निद्रा दोष से स्वप्न का जगत् बाहर प्रकट हुआ सा प्रतीत होता है इसी प्रकार जो पुरुष दर्पण में दृश्यमान नगरी के समान अपने अन्दर स्थित इस जगत् को माया से बाहर प्रकट हुआ सा देखता है और जो ज्ञान के समय अद्वितीय आत्मा को ही साक्षात्कार करता है, उसी श्री गुरु मूर्ति दक्षिणामूर्ति (शिव) को यह नमस्कार हो ॥ २ ॥

ब्रह्मैवाहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्र विस्तारितं ।
सर्वं चैतदविद्यया त्रिगुणया मयैव कल्पितम् ॥
इत्यंयस्य दृढा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले ।
चाण्डालोऽस्तु सतु द्विजोस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥ ३

मैं ब्रह्म ही हूं और इस सकल जगत् का मुझ चिन्मात्र से विस्तार हुआ है, और तीन गुण वाली अविद्या से मैंने ही इस जगत् की कल्पना की है इसी प्रकार सुख रूप नित्य पर और निर्मल ब्रह्म के विषय में जिस की दृढ बुद्धि है वह चाहे चाण्डाल हो या ब्राह्मण मेरी बुद्धि में वह गुरु है ॥ ३ ॥

नित्यं ब्रह्म यथा स्मरन्ति मुनयोः हंसा यथा मानसं ।
शारङ्गा घनगर्जितं वनगजा ध्यायन्ति रेवा तटम् ॥
युष्मद्दर्शन लालसा प्रतिदिनं युष्मान् स्मरामो वयं ।
धन्यः कोऽपि स वासरो हि भविता यत्रावयो संगमः ॥ ४

जिस प्रकार मुनि नित्य ब्रह्म का ध्यान करते हैं, हंस सरोवर का, मोर घन गर्जना का, हाथी नदी के तीर का स्मरण करते है इसी प्रकार आपके दर्शन की लालसा प्रति

दिन बनी रहती है । वह कौनसा शुभ दिन होगा जब हमारा और आप का समागम होगा ॥ ४ ॥

दूरेऽपि श्रुत्वा भवदीय कीर्त्तिं,
करणौ च तृप्तौ न च चक्षुषी मे ।
तयोर्विवादं परिहर्त्तु कामः,
समागतोऽहं तव दर्शनाय ॥ ५ ॥

आपकी कीर्ति दूर से सुन कर कर्ण तो तृप्त होगये परन्तु आंखें तृप्त नहीं हुईं । उन के विवाद को दूर करने की कामना से मैं आपके दर्शन करने को आया हूं ॥ ५ ॥

रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिता: सप्ततुरगा ।
निरालम्बो मार्गश्चरणविकल: सारथिरपि ।
रविर्यात्येवान्तं प्रतिदिनमपारस्य नभस: ।
क्रियासिद्धि:सत्वे वसति महतां नोपकरणे ॥ ६ ॥

सूर्य के रथ का पहिया तो एक, सांपों से बन्धे सात घोड़े, आकाश मार्ग और चरण हीन सारथी होने पर भी प्रतिदिन सूर्य आकाश के पार हो जाता है इससे महत् पुरुषों की क्रिया सिद्धि बुद्धि में होती है सामग्री में नहीं ॥ ६ ॥

विजेतव्या लंका चरण तरणीयो जलनिधो ।
विपक्ष: पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपय: ।
पदातिर्मर्त्योऽसौ सकलमवधी द्राक्ष सकुलं ।
क्रियासिद्धि: सत्वे भवति महतां नोपकरणे ॥ ७ ॥

लंकापुरी को जीतने वाले, सागर को चरणों से पार करने वाले, पुलस्त्य ऋषि का पुत्र महाबली रावण के विपक्ष में बानरों की सहायता से पैदल ही रामचन्द्रजी ने मनुष्य शरीर से समस्त राक्षसों के कुल का नाश कर दिया । इससे महत् पुरुषों की क्रिया

सिद्धि बुद्धि में होती है सामग्री में नहीं ॥ ७ ॥

घटो जन्मस्थानं मृगपरिजनो भूर्जवसनं ।
वने वासः कंदादिकमशन मेवं विधगुणः ॥
अगस्त्यः पाथोधि यदकृत करांभोजकुहरे ।
क्रियासिद्धिः सत्वे भवती महतां नोपकरणे ॥ ८ ॥

घट ही जन्म स्थान है, मृग ही परिवार के मनुष्य हैं भोज पत्र ही वस्त्र है, वन ही वास स्थान है, कंद मूल भोजन है ऐसे ही गुणों से भूषित अगस्त्य मुनि ने समुद्र का आचमन कर लिया इस कारण महत् पुरुषों की क्रिया सिद्धि बुद्धि में ही होती है सामग्री में नहीं होती॥ ८ ॥

स्तोष्ये भक्त्या विष्णु मनादिं जगदादिं ।
यस्मिन्नेतत्संसृति चक्रं भ्रमतीत्थम् ॥
यस्मिन्दृष्टे नश्यति तत्संसृति चक्रं ।
तं संसार ध्वान्त विनाशं हरि मीडे ॥ ९ ॥

अनादि जगदादि विष्णु की भक्ति पूर्वक स्तुति करता हूं, जिस में यह संसार चक्र इस प्रकार घूम रहा है और जिसके दर्शन से यह संसार चक्र नष्ट होजाता है उस संसार रूपी अंधकार को नाश करने वाले हरि की स्तुति करता हूं ॥ ९ ॥

कदा वृन्दारण्ये विमल यमुना तीर पुलिने ।
चरन्तं गोविन्दं हलधर सुदामादि सहितं ।
अयि कृष्णस्वामिन् मधुरमुरलीवादन विभो ।
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिष मिव नेष्यामिदिवसान् ॥ १० ॥

किसी समय वृंदारण्य में सुंदर यमुना के किनारे पर बलराम और सुदामा सहित भ्रमण करते हुये श्रीकृष्ण की कोई भक्त प्रार्थना करता है कि हे मधुर मुरली बजाने वाले विभो! कृष्ण स्वामिन् !! प्रसन्न हो इस प्रकार आक्रोशन करता हुआ मैं क्षण मात्र में ही

दिनों को दिखाऊंगा ॥ १० ॥

कृष्णत्वं पठ किं पठामि ननु रे शास्त्रं किमुज्ज्ञायते ।
तत्वं कस्य विभोः सकलभुवनाधीशश्चतेनापिकिम् ॥
ज्ञानं भक्ति रथो विरक्ति रनया किम् मुक्ति रेवास्तु ते ।
दध्यादीनि भजामि मातु रुदितं वाक्यं हरेः पातु वः ॥ ११

रे लाला कृष्ण! क्योंरी माता! लाला पढ! क्या पढूंरी मय्या? प्यारे! शास्त्र! हे माता! शास्त्र पढ़ने से क्या होगा? पुत्र तत्व जाना जायगा किस का? परमात्मा का। हे माता परमात्मा कौन है? ललना त्रिलोकी के नाथ। हे माता उस से क्या होगा? ज्ञान और भक्ति। भक्ति से क्या होगा? हे पुत्र मुक्ति। वह तो तुझे मिलेरी मय्या, ऐसे अगड़ फगड़ झगड़ों से मुझे क्या मिले! मैं तो दधि चूड़ा खाने को लेऊंगा भगवान् के यह वाक्य हमको पवित्र करें॥ ११ ॥

भक्ति ।

चतुर्थाङ्क से आगे

एक बार नारद जी भ्रमण करते २ ब्रह्मा जी के पास गये और उन से पूछा कि भगवन् इस कलि काल से मनुष्य का किस प्रकार निस्तारा हो। ब्रह्मा जी ने कहा तुमने बहुत श्रेष्ठ पूछा है जो सारी श्रुतियों का रहस्य है गोप्य है उसे मैं तुमको बताता हूं कि "भगवान् आदि पुरुष नारायण का नामोच्चारण करने से मनुष्य इस संसार सागर से पार उतर सकता है। नारद जी ने पूछा कि उनके नामोच्चारण की क्या विधी है तो ब्रह्मा जी ने कहा कि भगवत् नामोच्चारण की विधि नहीं शुद्ध, अशुद्ध, किसी अवस्था में, किसी स्थान में भगवत् नामोच्चारण कर सकता है। भगवत् के नाम का जप करने वाला ब्रह्म हत्या, वीर हत्या, पितृ, देव, मनुष्यों, के साथ में किये हुऐ अपकारों से छूट जाता है।

भक्ति के भेद।

भक्ति दो प्रकार की होती है। एक हैतुकी-भक्ति और दूसरी अहैतुकी-भक्ति। किसी हेतु को लेकर जो भगवत्चरणों में प्रीति होती है वह हैतुकी भक्ति कहलाती है और जो निष्कामभाव से स्वाभाविक ही श्री चरणों में प्रीति होती है उस को अहैतुकी भक्ति कहते हैं। उच्च श्रेणी की भक्ति का लाभ करने के लिये प्रथम हैतुकी भक्ति का अवलम्बन करना चाहिये। धीरे २ इसी के द्वारा उच्च भक्ति का आदुर्भाव होगा अनेक शास्त्रों का श्रवण करने से, भगवद्विषयक कथाओं का श्रवण करने से भक्ति का संचार मनुष्य के हृदय में होता है। भगवान् ने कृपा करके हमको कितनी सुख सामग्रियां दी हैं उन्हों ने दया करके हमको अन्न जलादि से युक्त किया, मोक्ष प्राप्त्यर्थ हमको अत्यन्त दया करके यह मानव शरीर प्रदान किया जिस के लिये देवता भी सदा लालायित रहते हैं। ऐसी २ अनेक प्रकार की बातें सोच कर मनुष्य के हृदय में हैतुकी भक्ति का संचार होता है। भगवान् दया के समुद्र हैं उनके बराबर दयावान् कोई नहीं है वह अवश्य मेरा उद्धार करेंगे इत्यादि भावों को लेकर जो भक्ति की जाती है वह हैतुकी भक्ति होती है। धीरे २ यह हैतुकी भक्ति अहैतुकी भक्ति में परिवर्तित हो जाती है। ध्रुव ने अपनी विमाता से अपमानित होकर राज पाठकी प्राप्त्यर्थ वन में जाकर ईश्वराराधना प्रारम्भ की। और यह दृढ़ निश्चय किया कि ईश्वर की कृपा से अवश्यमेव पिता से भी उच्चतर पद प्राप्त होगा। वह भगवान् की बड़ी श्रद्धा से भक्ति करने लगा। वह भक्ति शनैः शनैः इतनीप्रगाढ़ होगई कि अन्त में जब भगवान् ने प्रसन्न होकर उनको दर्शन दिये और कहा कि "वत्स! वर मांग?" तब ध्रुव उनकी भक्ति में इतने लीन थे कि वह प्रेम में आकर उस समय अपनी तपस्या का मूल कारण ही भूल गये और पूछते हैं "भगवन् कौन सा वर! भगवान् कहते हैं कि जिसके लिये तैंने मेरी अराधना करनी प्रारम्भ की थी। तब ध्रुव जी उत्तर देते हैं कि "हे स्वामिन् यह सत्य है कि मैंने पदाभिलाषी हो कर आपकी अराधना करनी प्रारम्भ की थी। परन्तु बहुत से मुनीन्द्र योगीन्द्र जिस को बड़ी २ कठिन तपस्याओं के पश्चात् भी प्राप्तनहीं कर सकते हैं। उन को आज मैंने प्राप्त कर लिया। वास्तव में शीशे की खोज करते २ मुझे अमूल्य रत्न मिल गया। हे स्वामिन्! अब मैं कृतार्थ हूं। अब कोई दूसरी और अभिलाषा नहीं है। केवल एक मात्र आप को चाहता हूं। देखिये ध्रुव जी ने हेतु को ध्यान में रख कर भगवान् की आराधना करनी प्रारम्भ की थी। परन्तु धीरे २ वह हेतु अहेतु में परिवर्तित हो गया। मनुष्य भ्रम के वश होकर हैतुकी भक्ति से भगवान् को छोड़ अन्य वस्तु की कामना करते हैं परन्तु जब

अमृत सागर की एक बिन्दु का भी स्वाद उन की रसना पर आजाता है तो क्या वह कभी भी दूसरी वस्तु की अभिलाषा कर सकते हैं ? कदापि नहीं।

अहैतुकी शब्द का अर्थ है कि जिसका कुछ हेतु नहीं। इस कार्य के करने से मुझे अमुक वस्तु की प्राप्ति होगी इत्यादि हेतु मूलक अहैतुकी भक्ति कदापि नहीं हो सकती। अनन्त दयामय, करुणा सागर भगवान् ने मुझे यह पदार्थ दिये हैं या देंगे इस लिये उन की भक्ति करता हूं यह भाव अहैतुकी भक्ति के पास भी फटक नहीं सकते, यह भाव तो वहां से कोसों दूर रहते हैं। मैं प्रेम करता हूं, हृदय से प्रेम करता हूं, मेरा स्वभाव ही है कि तुम को छोड़ कर और किसी को न जानूं इत्यादि भाव अहैतुकी भक्ति के मूल सूत्र हैं। देवर्षि नारदादि ने इसी भक्ति को अपने जीवन का मुख्य ध्येय समझा था।

गुण के भेद से भक्ति तीन प्रकार की होती है। सात्विकी, राजसी, और तामसी। तामसी भक्ति से धीरे २ राजसी भक्ति का प्रादुर्भाव होता है और राजसी भक्ति से शनैः शनैः सात्विक भक्ति उदय होती है पश्चात् सात्विकी भक्ति ही कालान्तर में अहैतुकी भक्ति में परिणत होजाती है। श्रीभगवान् गीता में कहते हैं कि:-

अपि चेत्सुः दुराचारो भजते मामनन्य भाक् ।
साधु रेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

अति दुराचारी भी मुझे अनन्य भाव से भजने लगे तब उसे साधु ही समझना चाहिये क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला हुआ है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा होता है और शाश्वत शान्ति रूप मोक्ष को प्राप्त होता है हे कौन्तेय! तू प्रतिज्ञा से जान कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता। चोर, डाकू आदि अपने कुकर्म की पूर्ति के अर्थ जो भगवान् की भक्ति करते हैं उनके लिये कड़ाई आदि करते हैं मनोती मनाते हैं यह सब तामसी भक्ति है। अथवा जो पुरुष मारन, मोहन तथा उच्चाटनार्थ ईश्वर का जप करते हैं, मुकदमा जीतने के निमित्त उस के नाम की माला फेरते हैं वह सब तामस भक्त कहाते हैं। जिस पुरुष के पुत्र न हो, जो निर्धन हो वह पुरुष साधु महात्माओं की सेवा पुत्र, धन, यश, मान, ऐश्वर्यादि की कामना से करे तो वह राजस भक्त कहाता है। जिस पुरुष की इच्छा पृथिवी के किसी भोग पदार्थ की नहीं जो केवल मुक्ति की कामना से ईश्वराराधना करता है। वह सात्विक भक्त कहाता है यह तीनों प्रकार की भक्ति सकाम (हैतुकी) भक्ति कहलाती है। आर्तादि भेद करके गीता में श्रीकृष्ण भगवान् चार प्रकार के भक्तों का उदाहरण देते हैं

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

हे भरतश्रेष्ठ! पुण्यवान् जन मुझ को चार प्रकार से भजते हैं, दुःख में पड़कर, जिज्ञासु होकर, धन की चाहना से और ज्ञानी हो

कर। यह श्लोक सिद्ध करता है कि भक्ति सब प्रकार के लोगों के लिये है। कोई भी मनुष्य दुःख से छूटने के लिये, भय से त्राण के लिये चित्त की शान्ति के लिये, तथा मोक्ष पर्यन्त किसी भी वस्तु की कामना के लिये अनन्य भाव से भगवान् का स्मरण करता हो तो भगवान् उस की सब कामनाओं को पूर्ण करके उसे मुक्त करते हैं।

पूर्व काल में निरंजन नाम एक ब्राह्मण काशी में रहता था वह सर्वदा भगवान् की पूजा पाठ में रत रहता था। बहुत निर्धन होने से कई बार उपवास भी करने पड़ते थे। एक बार उस की स्त्री ने कहा कि कुछ उदरभर्णार्थ पुरुषार्थ करना चाहिये। उसने कहा कि श्रीभगवान् ने स्वयं गीता में कहा है कि:-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

जो पुरुष अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करता हुवा मेरी उपासना करता है, उस नित्य आदर पूर्वक चिन्तन करने वाले पुरुष के योग क्षेम का मैं वहन करता हूं। "ऐसा श्रीमुख का वचन है वह कभी असत्य नहीं हो सकता इस लिये मुझे एक वर्ष पूर्ण श्रद्धा से उस जगन्नियन्ता जगदीश्वर की सेवा करने दे वह सर्व हृदयान्तर्गत सर्व काल में सबका भला ही करते हैं। इस प्रकार से वह अपनी स्त्री को समझा कर भगवान् की पूजा पाठ में रत रहने लगा। धीरे धीरे वर्ष पूर्ण होने को आया। और परमात्मा ने कुछ कृपा नहीं की। उस की स्त्री निराश होगई। अब तो वर्ष में एक ही दिन शेष रह गया घर में अन्न का कण नहीं, सब बालक व्याकुल हो रहे हैं अब क्या करना चाहिये। परमात्मा ने उत्तम कसौटी करनी चाही थी। वह सुशील ब्राह्मण नित्य कर्म से निवृत होकर विचारने लगा कि मैं परमात्मा का एक निष्ठा से भजन किया करता हूं परन्तु परमात्मा ने अब तक मेरे ऊपर दया नहीं की भगवान् का यह वचन तो झूठा नहीं हो सकता। कदाचित् यह श्लोक हो किसी दंभी ने लिख दिया हो ऐसा कह कर उस ब्राह्मण ने उस पर हड़ताल फेर दी और किसी धनवान् के पास धन की याचना से घर छोड़ कर बाहर निकल गया। परन्तु थोड़ी दूर जाकर उसका श्रद्धालु हृदय कांपने लगा। उस ने विचारा कि मैंने एक वर्ष की प्रतिज्ञा की थी अभी उस में एक दिन शेष है। मैंने एक दिन के लिये भी धीरज नहीं धरा! मैं क्या करूं सचमुच परमात्मा का वचन सत्य ही है। यह विचार कर वह ब्राह्मण विकल होकर एक कंदिरा में सोरहा। परमात्मा ने उस के धीरज की तथा श्रद्धा की परिक्षा की थी। एक रस श्रद्धा तथा धीरज रख कर भगवान् की सेवा करना तथा जानना यह कोई साधारण बात नहीं है। जिस प्रकार स्वर्ण को जब तक अग्नि में तपा कर शुद्ध नहीं करते तब तक उस की पूरी कीमत नहीं होती इसी प्रकार भक्त जब तक एक निष्ठ तथा ज्ञानवान् नहीं

बनता तब तक परमात्मा उस को सफल मनोरथ नहीं करता। जो मनुष्य एक चित्त और शुद्ध होकर सुख तथा दुःख, हानि तथा लाभ में उस का ध्यान करता है क्षण भर भी उससे विमुख नहीं होता उसी को परमात्मा अपना नित्य मुक्त भक्त गिन कर उसका कल्याण करते हैं। जब वह ब्राह्मण इस प्रकार विकल हो कर एक निष्ठा से उसका ध्यान करने लगा तो भगवान् ने उसे पूर्ण काम किया।

एक समय नारदजी वीणा बजाते २ परमात्मा का गुण गान करते वैकुण्ठ पुरी में पहुंचे। विष्णु भगवान् ने नारद जी से कुशल क्षेम के पश्चात् कहा कि जो पुरुष निर्मल अन्तःकरण से मेरा ध्यान धरता है वह मेरा अनन्य भक्त मुझको अतिप्रिय है। ऐसे भक्तों के ऐश्वर्य तथा बल से ही इस समस्त जगत की विभूतियों का पोषण होता है। वह भक्त ही वेदों का वेद, सार का सार और तत्वों का तत्व है। नारद जी ने कहा हे भगवन्! ऐसे आप के परम भक्त के मैं दर्शन करना चाहता हूं। भगवान् विष्णु ने कहा कि अचलापुरी में परमतत्व नामक ब्राह्मण के घर जाओ। वहां तुमको मेरे भक्त के दर्शन होंगे। तत्पश्चात् मनोवेगी नारदजी विष्णु भगवान् को प्रणाम कर क्षण मात्र में परमतत्व ब्राह्मण के घर पहुंच गये। यह ब्राह्मण प्रातःकाल उठकर शुद्धमन से, अकामनासे तथा एक निष्ठा से नित्य प्रति परमात्मा का ध्यान धरता पश्चात् अपने गृह कार्य में संलग्न हो जाता। इसी प्रकार सायंकाल को सोते समय भी भगवान् का ध्यान धर सोजाता। नारद जी ने विचार किया कि अहो! परमात्मा का परम भक्त क्या यही है। इसप्रकार के भक्तों से तो सारा संसार भरा हुवा है। सचमुच विष्णु भगवान् ने मेरे साथ हंसी की है। यह विचार कर नारदजी विष्णु भगवान् के पास आकर अपने मनका उद्गार आलापने लगे कि हे महाराज! ऐसे आपके भक्तों से तो सारा संसार भरा पड़ा है कोई स्थल ऐसे भक्तों से शून्य नहीं है सचमुच महाराज आपका ठट्ठा करने का स्वभाव है। भगवान् नारद जी का भाव समझ गये और विचारा कि नारद जी मेरे अनन्य भक्त के समझने में असमर्थ रहे। यह विचार कर उन्हों ने नारद जी से कहा कि इस राई के दाने को अपनी वीणा के अग्रभाग पर रखकर वैकुण्ठ पुरी की प्रदक्षिणा करके लौट आओ। नारद जी ने विचारा कि भगवान् ने फिर मेरे साथ ठट्ठा किया। परन्तु इसका अन्तिम परिणाम देखने को नारद जी ने ज्योंही प्रदक्षिणा करनी आरम्भ की त्यों ही राई का दाना हिलने लगा! अभी गिरेगा गुम होजायगा! इस की नारद को बड़ी चिन्ता हुई। अतः उनकी दृष्टि राई के दाने पर ही लगी रही। बहुत काल के पश्चात् नारद जी प्रदक्षिणा करके विष्णु भगवान् के पास आकर कहने लगे, लिजिये महाराज यह अपना राई का दाना! इसने तो कष्ट देने में कुछ भी कमी

रक्खी नहीं ! है तो छोटा सा परन्तु बड़ी से बड़ी उपाधि से भी अधिक कष्ट दायी है। विष्णु भगवान् ने पूछा नारद जी वैकुण्ठ की प्रदक्षिणा करते समय तुमने मेरा कितनी बार चिन्तन किया ? नारद जी ने कहा महाराज चिन्तन किसका करता ? मेरा चित्त–तथा आत्मा सब इस दाने में लगे हुए थे यदि आपका चिन्तन करता तो यह दाना सटक जाता, फिर आप की आज्ञा भंग होती। तब विष्णु भगवान् ने कहा नारदजी जिस परमतत्व ब्राह्मण को आपने देखा वह आपकी अपेक्षा अधिक भक्त है। यह आप को निश्चय हुआ या नहीं ? एक गोल छोटे से दाने की रक्षा के लिये आप क्षण भर भी मेरा ध्यान नहीं कर सके ! यह संसारी जीव तो अनेक प्रकार के खटरागों में बन्धा हुआ है, बड़े कुटुम्ब के पालन की द्विधा में डूब गया है, संसार की अनेक उपाधियां इस को पीड़ा देती हैं इस पर भी वह निर्मल हृदय से, एक निष्ठा से तथा अकामना से मेरा ध्यान करता है। तुम तो निरंजन निर्विकार हो, संसार तथा मया से मुक्त हो इस से दिन रात मेरे ध्यान में निमग्न रहो इस में कोई आश्चर्य नहीं परन्तु जो जीव संसार के अनेक झंझटों में पड़ कर भी नित्य दो बार मेरा स्मरण करता है उस के ऊपर मैं सदा प्रसन्न रहता हूं। वही मेरा अनन्य भक्त है। ऐसे ही परम भक्त मेरा निरन्तर भजन ध्यान करने से इस असार संसार से मुक्त होते हैं, ऐसों का मैं योगक्षेम स्वयं वहन करता हूं। यह ही मेरे परम भक्त मुझ को अत्यंत प्रिय हैं।

"ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्"

जो मुझे भक्ति से भजते हैं उन में मैं, और वह मुझ में विशेष रूप से स्थित हैं।

अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः सम दुःख सुखः क्षमी ।
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ निश्चयः ।
मय्यर्पित मनो बुद्धियों मे भक्तः स मे प्रियः ॥

सारे भूतों में द्वेष रहित, सब का मित्र, दयालु अहंता ममता से छूटा हुवा सुख दुःख में सम बुद्धि वाला, क्षमावान्, सर्वदा संतुष्ट, योगयुक्त, मन तथा इन्द्रियों को वश में रखने वाला दृढ़ निश्चय वाला, और मुझ में अर्पण किये हुए मन बुद्धि वाला, ऐसा मेरा भक्त मुझको अत्यन्त प्रिय है।

क्रमशः ॥

(भूमानन्द ब्रह्मचारी)

शिव रात्री ।

(ले० श्री० पं० कार्तिकेयचरण मुखोपाध्याय ।)

नमस्तेस्तु महादेव नमस्ते परमेश्वर।
नमः शिवाय देवाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥
नमोस्तु ते महेशाय नमः शान्ताय हेतवे ।
प्रधान पुरुषेशाय योगाधिपतये नमः ॥
नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं ब्रह्मणे जनकाय ते ।
ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्या-प्रदायिने ॥
नमो वेद रहस्याय कालकालाय ते नमः ।
वेदांत सार साराय नमो वेदात्ममूर्त्तये ॥

ब्रह्मादि देव गणों द्वारा इस प्रका अभिनन्दित होनेवाले देवाधिदेव महादेव की पूजा अर्च्चा करना, उनके देव दुर्लभ गुणों की आलोचना करना निःसन्देह पाप ताप पीड़ित संसारज्वाला से विदग्ध मानव हृदय में शान्ति की धारा बहानेवाला है, इस में कौन संदेह कर सकता है ?

जिन शंकर में ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तपस्या, सत्यता, क्षमा, धृति, आत्मसम्बोध, समदर्शिता और अधिष्ठातृत्व ये दसों भाव सदा अव्यय रूप से विद्यमान हैं, उन के गुणगान और स्मरण से यदि मनुष्यका कल्याण न होगा तो और किस से होगा ?

जिनके नेत्रों की ज्वाला से कामादि अर्श शत्रुओं का संहार होता है जो मृत्यु के लिये भी काल स्वरूप है जो तमाम तमो गुणों का विनाश करने वाले हैं, स्वयं प्रकृति जिनकी आज्ञाओं की वश वर्तिनी है उन मंगलमय और अमंगल हारी पिनाकधारी शंकर का गुणगान मनुष्यों के समाय पापों का हरण करे, अशान्त मानव मन को शान्त करे, इस में कौन संसय कर सकता है ?

संसार के समस्त जीवों को भस्मीभूत करने की शक्ती रखने वाले विष को भी जो अनायास ही पान करलें और उनका कुछ भी न बिगड़े उनके स्मरण मात्र से समस्त कुत्सित वासनायें और कामनायें क्यों नहीं भस्म होजांयगी ?

स्वर्ग जिनका मस्तक है, पृथ्वी जिनका पैर है दिशायें जिनकी भुजायें हैं, आकाश जिनका उदर है, उन विराट पुरुष के चिन्तन मात्र से क्षुद्र मानव को यदि अपनी क्षुद्रता का ज्ञान न हो, उसका मिथ्याहंकार दूर न हो तो और किस से हो सकता है ?

जिनकी महीयसी माहेश्वरी शक्ति भूत मात्र के अन्तरतम प्रदेश में विराज रही है

और जो समस्त चराचराके कारण स्वरूप हैं उनकी महिमा का ध्यान करना यदि मनुष्य को उन्नत नहीं करेगा तो और कौन करेगा ?

जो समस्त प्रकाशकों के प्रकाश हैं जो समस्त अन्धकारों के विनाशक हैं जिनके आलोक से निखिल ब्रह्माण्ड आलोकित होता है और जो केवल ज्ञान गम्य हैं उनके पास पहुंचने की इच्छा करनेवाले के हृदय का अन्धकार क्यों नहीं दूर होगा ?

जो योगियों को योगानन्द ब्रह्मचारियों को ब्रह्मानन्द गृहस्थियों को कामानन्द और ज्ञानियों को परमानन्द प्रदान करते हैं जिन की झोली में तीनों लोक और चौदहों भुवनों की सारी सम्पत्ति अक्षय-रूप से विराजती है, उनकी पूजा-अर्चा से यदि मनुष्य तृप्त न होगा, तो और किस से होगा ?

अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के जो दाता हैं; काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य जिन के नाम से ही दूर भागते हैं, उनके गुण-गान से जीवात्मा परितृप्त न होगी, तो और कहां होगी ?

जिन की शक्ति का अन्त नहीं है, जिन के कार्य अनन्त हैं, जिनकी महिमा अपरम्पार है, जो अनन्त रूपों में विराजमान हैं और जिन के नाम भी अनन्त हैं, उन के विषय में मनुष्य जो कुछ सुने या जो कुछ गुण-गान करे, वही लाभदायक है। जो निराकार होने पर भी साकार हो सकते हैं, जो सूक्ष्म होते हुए भी स्थूल हैं, जो अव्यक्त होकर भी व्यक्त हैं, जो निरवयव होते हुए भी सावयव हैं, जो निरञ्जन होकर भी गुणाञ्जन हैं, जो गुणाधार भी हैं और निर्गुणाधार भी हैं जो अमूर्त्त होते हुए भी मूर्त्त हैं, जो अस्फुट होकर भी स्फुट हैं, जो कराल-रूप होते हुए भी सौम्य-रूप हैं, जो नित्यानित्यप्रपंचात्मक होकर भी निष्प्रपंच हैं, जो एक हो कर भी अनेक हैं, जो सब में व्याप्त होते हुए भी किसी के बन्धनाधीन नहीं हैं, जो त्रिगुणात्मक होकर भी त्रिगुणातीत हैं, उन्हीं परब्रह्म-स्वरूप शङ्कर की उपासना का आज विशेष दिन है, सभी हिन्दू व्रतोपवास-पूर्वक आज उनकी पूजा करते हैं।

पुराकाल की बात है। देवाधिदेव महादेव साक्षात् शक्ति स्वरूपिणी भगवती पार्वती के साथ अपनी परम प्रिय कैलाशपुरी में बैठे हुए थे। कैलाशपुरी तरह, तरह के पुष्पों की सुगन्ध से भर रही थी। चारों ओर हरी-भरी फुलवारी थी। वह भी ऐसी वैसी न थी, स्वयं प्रकृति ने इसे अपने हाथों से रचा था। बड़े छोटे तरह, तरह के पेड़पौधे लगे हुए थे। सर्वत्र शान्ति विराज रही थी। यहां रहने वाले सभी जीव सुखी थे। किसी को किसी तरह का कष्ट नहीं था। ठीक ही है, जो पुरी भगवान् शङ्कर को प्रिय है और जहां जगत् के माता पिता साक्षात् पार्वती-परमेश्वर प्रकृति और पुरुष के रूप

में विराजमान हैं, वहां कैसे कोई जीव दुःखी हो सकता है ?

ऐसे आनन्दमय समय में भगवती पार्वती ने भगवान् शंकर से पूछा— हे देवाधिदेव ! अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के आर्थी मर्त्य-लोकवासी आप को किस प्रकार सन्तुष्ट कर सकते हैं ? योग से, तप से अथवा अन्य किस प्रकार प्रसन्न होकर आप उनको चारों फल प्रदान कर सकते हैं ?"

देवी का वह प्रश्न सुन, भगवान् शंकर ने प्रसन्नता पूर्वक कहा,—"हे देवि ! फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को जो उपवास करता, है वह अवश्य ही मेरी कृपा प्राप्त करता है, वह अवश्य ही स्नान भी न करे, मन्त्र भी न बोले, शुद्ध वस्त्र भी न धारण करे, तो भी उक्त तिथी को उपवास करने वाला सदा मेरा कृपाभाजन होता है ।

और यदि त्रयोदशी के दिन स्नान कर ब्रह्मचर्य-पूर्वक, शुद्ध सात्विक आहार भोजन करे और चतुर्दशी की रात्रि को उपवास-पूर्वक मेरा नाम स्मरण करे और मेरे प्रति भक्ति भाव धारण कर मेरे लिङ्गस्वरूप पर यदि सचन्दन पुष्पविल्वपत्रादि चढ़ावे, तो निःसन्देह वह मेरी परम कृपा पा सकता है ।

"जो उक्त तिथि को उपवास और पूजोपासन करने के बाद मेरे भजन और गुण-गान में रात बिताता है, वह अवश्य ही मेरा परम प्रसाद प्राप्त कर सकता है" ।

शिव जी की बात सुन, देवी परम प्रसन्न हुई और बोलीं,—"हे देव ! आपने कृपा कर मेरे प्रश्न का जो उत्तर दिया, उस से मुझे परम प्रसन्नता हुई; परन्तु कृपा कर अब यह भी बतायें, कि उक्त तिथी विशेष का ही इतना माहात्म्य क्यों ?"

भगवान् बोले,—"मर्त्यलोकवासी माया में लिपटे रहने के कारण नित्यप्रति समान श्रद्धा पूर्वक मेरी पूजा नहीं कर सकते। इस के अतिरिक्त उक्त तिथि के माहात्म्य की कथा इस प्रकार है। सुनो—

"मर्त्यलोक में वाराणसी नाम की एक सर्व-गुण-सम्पन्न, एक परम-पवित्र नगरी है। मर्त्यलोक में होने पर भी मेरे प्रसाद से वह स्वर्ग के समान है। वहाँ एक भयङ्कर व्याध रहता था। वह सदा ही पक्षियों का संहार किया करता था। वह नाटा, मोटा, काला, कलूटा और बड़े ही क्रूर स्वभाव वाला था। उसकी आँखें भूरी थीं और उसके सिर के बाल रूखे, कड़े और भूरे थे।

"एक दिन वही व्याध धनुषबाण, भाला बर्छा आदि शस्त्र, अस्त्रों से सज्जित होकर जङ्गल में शिकार करने गया। गहन वन में पहुंच कर उसने कितने ही पशुओं को मारा और उनका मांस पीठ पर लाद कर घर की ओर लौटा। उस भार को ढोता

हुआ वह उस वन से चला और दूसरे वन में पहूंचा; पर भार इतना अधिक था, कि वह थक गया और आगे न चल सका।

इतने में सूर्य अस्ताचल को चले गये। संध्या हो गई। क्रमशः अन्धकार छा गया कृष्ण-चतुर्दशी की रात होने के कारण अन्धकार और भी भयावना जान पड़ने लगा। गहन वन में अंधेरी रात के समय उस हिंसक व्याध को भी हिंसक वन-जन्तुओं का भय हुआ। अंधेरे में ही टटोल, टटोल कर वह एक वृक्ष पर चढ़ गया। वह वृक्ष श्रीफल यानी बेल का था। इसी वृक्ष पर चढ़ कर उसने उस मांस भार को भी एक डाली में बांध दिया।

"इसके बाद वह खुद भी एक डाली से चिपट कर बैठ रहा। थका मांदा होने पर भी उसे नींद न आयी; क्योंकि मारे जाड़े के वह ठिठुरा जा रहा था। ओस पड़ने से उसका सारा शरीर भीग रहा था। इस के अलावा उसने कुछ खाया पिया भी नहीं था।

"दैव योग से उसी बिल्व वृक्ष के नीचे मेरा लिंग स्थित था। (दैवयोगाच्च तन्मूले लिङ्गं तिष्ठति मामकम्) उस व्याध के शरीर पर पड़े हुए ओस का पानी टपक टपक कर मेरे स्मारक-स्वरूप उस लिंग पर पड़ा। साथ ही साथ तेज ठण्डी हवा के चलने से बिल्व पत्र भी टूट-टूट कर मेरे लिंग शरीर पर गिरे।

"उसके इस भाव से निराहार निशाजागरण से तथा उसकी इस क्रिया से मुझे परम प्रसन्नता प्राप्त हुई। उसने मेरी कृपा प्राप्त करली, यद्यपि उसने स्नान न किया था और न मेरे लिये सुन्दर, सुन्दर फल फूलों का नैवेद्य ही सजाया था। केवल तिथी माहात्म्य के कारण उसने मेरा प्रसाद प्राप्त कर लिया।

"यथा समय जब उस व्याध की मृत्यु का समय आ गया और यमराज के दूत गण उस हिंसा परायण व्याध की आत्मा को लेने के लिये आये, तब मेरे दूत भी वहां जा पहुंचे और यम के दूतों को मार भगाया तथा उसे शिवलोक में ले आये। यमदूत रोते, धोते यमराज के पास पहुंचे और उन्हें सब हाल कह सुनाया।

"यमराज दूतों की बात सुन फौरन दौड़े, दौड़े मेरे यहां आये और मेरे गणों के नायक नन्दी से इसका कारण पूछा, तो नन्दी ने कहा,–'यह ठीक है, कि इस व्याध ने जीवन भर हिंसा-वृत्ति से काम लिया है, पर तिथि माहात्म्य के कारण उसने भगवान् आशुतोष को परितृप्त कर अमरत्व प्राप्त कर लिया है और इसी लिये हम लोग उसे शिवलोक में ले आये हैं।"

भगवान् शंकर के मुख से यह कथा सुन, देवी परम प्रसन्न हुई। उन्हीं के द्वारा यह कथा हिमराज के घर पहुंची और वहाँ से इसका प्रचार पृथ्वी में हुआ।

(शिवपुराण)

महात्माओं के वचन।

मैं आकारों के समुद्र में इस आशा से गहरी डुबकी मारता हूं कि निराकार का पूर्ण मोती मेरे हाथ आ जाय।

मैं अपने जीवन भर अपने गीतों के द्वारा तुझे ढूंढता रहा हूं। अब मैं उत्सुक हूं कि मर कर अमरत्व में लीन हो जाऊं।

मैं तेरी कथाओं को अमर गीतों में प्रकट करता हूं और तेरा रहस्य मेरे हृदय से निकल पड़ता है।

मैं तुझे तेरी जीत की भेंटों और अपनी हार के हारों से अलंकृत करूंगा।

जीवन रूपी नौका की पतवार को जोड़ते समय मैं जानता हूं कि अब तू इसे अपने हाथ में ले लेगा।

नीलाकाश से एक आंख मेरी ओर देखेगी और इशारे से चुपचाप मुझे अपनी ओर बुलाएगी।

जब मैं यहाँ से विदा होऊं तब मेरे अन्तिम वचन यह हों, कि मैंने जो कुछ देखा है उस से बढ़ कर और कुछ नहीं हो सकता।

जब मा बच्चे को दाहने स्तन से छुड़ाती है तो वह चीखता है और दूसरे क्षण में ही जब वह उसे बांया स्तन देती है तब उसे आश्वासन होता है।

मुझे उस समय की कोई खबर नहीं जब मैंने पहले पहल इस जीवन में प्रवेश किया था।

जब प्रातः काल मैंने आकाश को देखा तो मुझे उसी क्षण मालूम हुआ कि मैं इस जगत् में कोई अपरिचित जन नहीं हूं और उस नाम रूप रहित अज्ञेय शक्ति ने मेरी मा का रूप धारण कर मुझे अपनी गोद ले लियाहै ऐ मेरे मित्रो! अब मेरे जाने की बेला है। तुम

सब मेरे लिये शुभ कामना करो। आकाश उषा से रक्तवर्ण हो रहा है और मेरा मार्ग सुहावना है। मैं अपनी यात्रा पर खाली हाथ और आशा पूर्ण हृदय के साथ जाता हूं।

मुझे छुट्टी मिल गयी है। ऐ मेरे भाइयो मुझे विदा करो मैं तुम सब को प्रणाम करता हूं। मेरा बुलावा आया है और मैं यात्रा के लिये तयार हूं।

मैं जो कुछ हूं, मेरे पास जो कुछ है, मैं जो कुछ आशा करता हूं, और मेरा प्रेम यह सब गम्भीर रीति से सदा तेरी ओर प्रवाहित होते रहे हैं। मेरे ऊपर तेरे नयनों का अन्तिम कटाक्ष पड़ते ही मेरा जीवन सदा के लिये तेरा होजायगा।

पुष्प पिरो लिये गये हैं, वरके लिये माला तयार है मृत्यु पश्चात्, वधु भक्त अपने घर से विदा होगी और अपने स्वामी से शून्य रात्रि में अकेली मिलेगी।

जब मृत्यु मेरे द्वार को खटखटायेगी तब अपने प्यारे अतिथि के आगे जीवन का भरपूर पात्र रख दूंगा। उसे खाली हाथ न जाने दूंगा।

प्रवीण शिल्पी अनेकों प्रतिमायें बनाते हैं। जब उनका समय आजाता है तब वे विस्मृति की पवित्र धारा में विसर्जन करदी जाती हैं।

वसन्त की मन्द २ वायु रह २ कर तेरे निर्जन भवन में उन फूलों के समाचार लाती है जो पूजा में अब तुझे नहीं चढ़ाये जाते।

मैं तेरे सन्ध्यागगन के सुनहरे शामयाने के नीचे खड़ा हूं। और अपने उत्सुक नयनों को तेरे मुखारविन्द की ओर उठाता हूं।

हाथ जोड़ कर अश्रु जल से मैं उसकी पूजा करूंगा और अपने हृदय के रत्न को उसके चरणों में अर्पण कर दूंगा।

हे प्रभु! तेरे हाथ में अनन्त समय है हमारे पास वृथा नाश करने के लिये तनिक भी समय नहीं है इस लिये हमें अपने अवसरों और सफलताओं के लिये छीना झपटी करनी चाहिये।

हम इतने दरिद्री हैं कि विलम्ब नहीं कर सकते। झगड़ा करने वालों के साथ झगड़ा करने में मेरा समय निकल जाता है। तेरी वेदी अन्त तक शून्य पड़ी रह जाती है। दिन समाप्त होने पर डरता हूं कि कहीं तेरा द्वार बन्द न हो जाय। पर ज्ञात होता है कि अभी समय बाकी है।

मेरे जीवन के प्रत्येक क्षण का नियन्ता तू है। सब के भीतर रह कर तू बीजों में अंकुर, कलियों में फूल और फूलों में फल उत्पन्न करता है।

जब मेरा घर विविध अलंकारों से सुसज्जित किया जाय उस में मैं यह अनुभव करता रहूं कि

मैंने तुझे अपने घर में निमन्त्रित नहीं किया है। एक क्षण भी न भूलूं और सोते जागते सदा ही इस शोक की वेदना मेरे मन में बनी रहे।

मैं शरद मेघ के उस बचे बचाये टुकड़े के समान हूं जो आकाश में व्यर्थ भटकता फिरता है। अपने स्पर्श से उसे पिघला कर अपने प्रकाश के साथ तन्मय करो तुझ से बिछुड़ा हुआ मैं महीनों और वर्षों घड़ियां गिन२ कर काट रहा हूं।

क्षण भंगुर जीवन को विविध वर्णों से रंग दे। सोने से सुनहरा करदे। चंचल वायु पर उसे छोड़ दे और विविध आश्चर्य जनक रूपों में उसे फैलने दे।

जब विधाता ने सृष्टि रचाना की तब नीलाकाश में सब तारे चमकते हुए निकल आये। देवता गीत गाने लगे आहा! कैसा शुद्धा नन्द है। अहा! कैसी पूर्ण छवि है। सहसा कोई बोल उठा अरे! ज्योतिमय ताल में एक स्थान खाली है। जान पड़ता है कि एक तारा खो गया। खोया हुवा तारा सब से श्रेष्ठ था उसी से आकाश मण्डल की शोभा थी। उस दिन से सारा जगत् उस तारे को ढूंढ रहा है।

हे प्रभु! हम को तूने जो कुछ दिया है वह हमारी सब अवश्यकताओं को पूरा करता है और फिर तेरे पास ज्योंका त्यों लौट जाता है।

जीवन की जो धारा मेरी नसोंमें रात दिन बहती है वही सारे विश्व में वेग से बहती है और ताल स्वर के साथ नृत्य कर रही है। आदि मरण अन्त अमर जीवन साधु का है।

बड़ाई शिर झुकने में है। प्रीतम के सिवाय किसीसे प्रीति न लगाने में बुद्धिमानी है। दीनता और आधीनता, गुरु में अटल विश्वास, अपने आप को पहचानना, भगवद्भक्ति करना, भगवत् मिलन की चिंता, सन्तोष, मेरा भजन बन्दगी मंजूर होगी या नहीं, निरन्तर स्मरण की लालसा, अपने को भूल जाना, प्रेमी प्रीतम बनजाना, संसारियों के संसर्ग से बचना, इत्यादि भगवान् कीकृपा के फल हैं।

कड़वी जुबान का मीठा जवाब देना, क्रोध में चुप साधना, चित्त कोमल रखना नम्रता के लक्षण हैं

तीन बात प्रशंसनीय हैं क्रोध में क्षमा, टोटे में उदारता और अधिकार में सहन।

तीन बात जितनी बढ़ावोगे बढ़ेंगी। भूख, नींद और डर।

तीन की महिमा तीन जानते हैं। जवानी की बूढ़े, आरोग्यता की रोगी, और धन की निर्धन।

तीन बातों से बचो सब तुम्हें पसन्द करेंगे। किसी से कुछ न मांगो, किसी को बुरा मत कहो, और किसी के महमान के बिना बुलाये पुट लग्गू न हो।

तीन के बिना तीन नहीं रहते। धन बिना वाणिज्य के, विद्या बिना शास्त्रार्थ के और राज बिना शासन के।

बूढ़ों का आदर करना, छोटों को सलाह देना, बुद्धिमानों से सलाह लेना, मूर्खों के साथ न उलझना।

चार तरह के आदमी होते हैं मक्खी चूस, कंजूस उदार और दाता। जो न आप खाय न दूसरे को दे वह मक्खी चूस, आप खाय पर दूसरे को न दे वह कंजूस, आप भी खाय और दूसरों को भी दे वह उदार और जो आप न खाय परन्तु दूसरों को दे वह दाता कहलाता है। यदि दाता नहीं बन सकते तो उदार तो अवश्य ही होना चाहिये।

संकट में मित्र की, रण में शूर की, ऋण में साहू की चोट में स्त्री की और रोग शोक में नाते दारों की पहचान होती है।

खुशी, रंज, रोजी, मौत यह चार अपने आप आती हैं।

चार जाकर फिर नहीं आती, छूटा हुआ तीर, मुंह से निकली बात, बीती हुई उमर और टूटा हुवा दिल।

जो आके न जाय वह बुढ़ापा देखा।
जो जाके न आय वह जवनी देखी॥

चार चीजें पहले निर्बल दीखती हैं और आगे जोर दिखलाती हैं। शत्रु, आग, रोग और ऋण।

पांच के संग सेव बना चाहिये झूठा, मूर्ख कन्जूस, डरपोक और दुष्ट।

एक पुरानी कहानी।

चतुर्थांङ्क से आगे।

गाड़ी में हंसते, भजन गाते दिल्ली पहुंचे। शहर में और ही नक्शा था। सब दुकाने बन्द थीं। हम सेठ नाथूराम, रघुरामप्रसाद की कोठी पर गए। यह आश्रम के खजानची हैं परन्तु यह भी असहयोगियों में थे। दरवाजे पर जमादार से भेंट हुई वह एक सरलात्मा ब्राह्मण था परन्तु हमारे इस कृत्य को वह भी

सहन नहीं कर सका । हम, हंसी, प्रेम, और वार्तालाप से उसको शान्त करके और सामान रख कर मित्रों (अछूतों) की तलाश में चल दिए । चान्दनी चौक में यह पूछने पर कि मिंस का स्वागत कहां होगा, लोग बिगड़ जाते थे और कई सज्जन तो नाराज़ होकर यह कहते कि क्या तुम चमार हो जो वहां जा रहे हो., ? उनकी बातों से हम को यह तो अनुभव होगया कि यह लोग अछूतों से चिढ़ कर उन से उदासीन होगए हैं । बात यहाँ तक बिगड़ी हुई थी कि हमको सैंकड़ों आदमी मिले और कई घण्टे हमने खर्च किए परन्तु किसी भले आदमी से हमको उनके उत्सव के स्थान का भी परिचय नहीं मिला, अन्त में एक अछूत भाई ने ही हमको स्थान बतलाया । हम पुराने किले पर पहुंचे । दरवाजे पर एक स्वयं सेवक बैठा था । उसने हमारा पता पूछा और यह जानकर कि हम हिन्दू हैं हमको अन्दर जाने से रोक दिया । वह दृश्य भी सदैव याद रहेगा । हम उस से प्रेम से बात चीत करते थे और वह हमको बड़ी घृणा और लापरवाही से उत्तर देता था । उसके इस बर्ताव से हमारी उत्कंठा और भी बढ़ गई और हम उसकी खुशामद करने लगे । अन्त में यह प्रसन्न हो गया और उसने यह कहकर हमको आज्ञा प्रदान की, कि हिन्दु मुसलमानों को तो जाने की आज्ञा नहीं है परन्तु साधुओं की मनाई नहीं है इसलिए आप जा सकते हैं । हमने भीतर प्रवेश किया परन्तु वहां जाकर हमारी कठिनाई और भी बढ़ गई । सभापति तो वहां था नहीं और मंत्री, उप मंत्री इत्यादि किसी ने भी हमसे बात चीत नहीं की । वहां बिलकुल विपरीत वायु मण्डल था । कोई आदमी विश्वास नहीं करता था । उनको यह उपदेश दिया गया था कि हिन्दू, मुसलमान तुम्हारी भलाई नहीं चाहते इसलिए उनसे बात करने में लाभ नहीं है । वह तुमको उलटा उपदेश करेंगे इससे उनकी वार्तालाप सुननी ही नहीं चाहिए । यह उपदेश करने वाले बहुधा उनके भाई ही थे और हम लोगों ने यह बात सत्य भी कर दिखलाई कारण हमारा व्यवहार उनके प्रति क्रोध व घृणा का था । बहुत प्रयत्न करने पर शाम को एक साधु ने प्रेम से हमारी बात चीत सुनी और हमको बतलाया कि इस समूह में केवल एक सभापति ही ऐसा है जो समझदार और सभ्य है इसलिए आप कल आकर उससे मिलें तो आपको सफलता होगी । हमने इतने पर सन्तोष करके भविष्य की आशा बान्धी और वहां से चल दिए ।

हमको उसी काम की धुन थी इस लिए शीघ्र ही पहुंच गए । वहाँ कोई पचास हज़ार आदमियों का समूह था । पिण्डाल बड़ा विशाल बना था । ऊंचा प्लेट फार्म बना कर कुर्सियां बिछाई गई थीं । लोगों के मन में बड़ा उत्साह और आनन्द था । उस समय वह लोग यह अनुभव करते थे कि शीघ्र

ही हमारी उन्नति हो जावेगी। लोगों में यह चर्चा थी कि दिल्ली का चीफ कमिश्नर शाहज़ादे को लेकर आवेगा। एक ही धर्म्म और एक ही कानून के आधीन अपने ही देशी भाई जिनको पास बिठाने में घृणा करें और जिनके छूने से पतित हो जावें उन लोगों में उस साम्राज्य का भावी सम्राट जिस को उच्च कुलाभिमानी ब्राह्मण और क्षत्री भेंट चढ़ाते हो आवेगा, इस आशा से उन के हृदय में जो आनन्द था उसका अनुमान हम नहीं कर सकते। उनके दिमाग़ में एक ही बात थी और उसके जप का यही मंत्र था कि शाहज़ादा कब आवेगा,, ? उनके इस उत्साह और आनन्द में मानसिक भावों से सम्मिलित हो कर हम मन ही मन में भगवान् की लीला को निहारते थे कि भगवान् तेरी माया अपरम्पार है, तेरी इस लीला के रहस्य को कौन जान सकता है ? जिनके साथ पशुओं से भी बुरा बर्ताव होता था उनकी सभा में शाहज़ादा आवेगा, यह कभी किसी को स्वप्न भी न आया होगा। इन विचारों के साथ हम को यह चिन्ता लगी थी कि किसी प्रकार हमारे बालकों को सभा में भजन और कविता सुनाने का अवसर मिलना चाहिए। हमने फिर उद्योग आरम्भ किया हमको जो भला और सभ्य आदमी दिखाई देता उसी से अपनी बात कहते परन्तु कोई सुनता ही न था। नौबत यहां तक आई कि हमने मंत्री के समक्ष अपनी बात की पुष्टि के लिए सरकार भी उपस्थित कर दिए जिन्होंने यह विश्वास दिलाया कि यह अछूतों के बालक हैं परन्तु फिर भी अर्ज़ी मंजूर नहीं हुई। अन्त में निराश होकर हम एक जगह बैठकर विचार करने लगे और सब से मिल कर यह निश्चय किया कि भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए। हम सब ने मिल कर प्रार्थना की और फिर प्रयत्न के लिए खड़े हुए। अब सभापति भी आ गया था। वह पढ़ा लिखा आदमी था और और मध्य प्रान्त की क़ानूनी कौंसिल का सभासद था। हमारे कहने सुनने पर उन्होंने यह स्वीकृति दे दी कि स्टेज पर तो नहीं, परन्तु दूसरी तरफ इनके भजन सुन लिए जावें। हमको अपने लड़कों की योग्यता पर विश्वास था, इस लिए हम इतने ही से सन्तुष्ट होगए। लड़कों का भजन गाना था कि सब के कान उधर ही जा लगे। लोगों को सुनकर बड़ा आनन्द हुआ। बस फिर क्या था फिर तो चारों तरफ से इनके भजनों का तकाज़ा होने लगा। लड़कों के साथ हमारा भी सम्मान होने लगा। हमको सभापति के बराबर में कुर्सियां दी गई। थोड़ी देर में खबर लगी कि महाराज कोल्हापुर आवेंगे और वह शीघ्र ही आगए। इस अवसर पर कोल्हापुर नरेश ने जो व्याख्यान दिया उससे अछूतों के प्रति उनका हार्दिक प्रेम व सहानुभूति स्पष्ट प्रकट होती थी उस धर्म्म रक्षक शिवाजी वंशज के यह शब्द थे कि "मैं तुमको अपना भाई समझता हूं और तुम्हारी सेवा करने को तय्यार हूं,,

उत्सव में कई अंगरेज़ पादरी आए हुए थे। महाराज कोल्हापुर तो थोड़ी देर बैठ कर चल दिए पीछे एक पादरी साहब ने व्याख्यान दिया जिस में हज़रत ईसा मसीह और ईसाई धर्म्म के गुण गाए गए। सभापति के विचार बहुत अच्छे थे वह पक्का हिन्दु था उसका हमारे साथ शीघ्र ही मेल होगया। उसको पादरी की बात खटकी। वह इस बात को किसी तरह भी पसन्द नहीं करता था कि उसके भाइयों पर ईसाई धर्म्म का प्रभाव पड़े। परन्तु साथ ही अपनी जाति की हीनावस्था से और हिन्दुओं की उदासीनता से उसका हृदय बड़ा दुःखी था। हमारा सहारा पाकर उसका उत्साह बढ़ गया और उसने खड़े होकर मीठे शब्दों में पादरी सहाब का खण्डन कर दिया। अब हम तो उनके घर वालों के समान होगए थे वह प्रत्येक प्रस्ताव हमारी सम्मति से उपस्थित करने लगे। हम में से दिलीप बनस्थली बोलने को खड़े हुए। उन्होंने अपनी युक्ति से पादरी की बातों का खण्डन भी कर दिया और सब लोगों के दिलों पर हिन्दू धर्म का प्रभाव भी जमा दिया। सब के ध्यान आकर्षित हो गए। अन्त में जब उत्सव समाप्त हुआ तो सभापति ने इस बात पर बड़ा हर्ष प्रगट किया और कहा कि मुझको अपने जीवन में आज दिन जैसा आनन्द कभी नप्राप्त हुआ कारणकि जिस बात का मुझे ख्याल भी न था कि हिन्दुओं में ऐसे भी आदमी मौजूद हैं जो हम से और हमारे बालकों से अपने बालकों की भान्ति प्रेम करते हैं, वह बात आज मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूं। मैं समझता था कि कुछ आर्य समाजी ही हमारे साथ सहानुभूति रखते हैं परन्तु मेरे आनन्द की सीमा नहीं रही है जब मैं भगवद्भक्ति आश्रम की सनातन धर्मावलम्बिनी संस्था को अपने भाइयों के साथ हार्दिक प्रेम करते देखता हूं।,,

यहां पर यह भी देखने में आया कि जो अछूत ईसाई होगए थे उनका अपनी जाति से मेल बिना हुआ था। उनसे बात चीत की तब उन्होंने कहा कि महाराज यदि हमारी जाति की उन्नति हो जावे तो हम फिर अपनी जाति में वापिस आने को तयार हैं और यदि साधन हों तो हम इनकी उन्नति के लिए बड़े प्रेम से काम करने को तयार हैं।

घटना।

किसी प्रकार गान्धी टोपी धारी एक आदमी किले में घुस गया था बस उस को देखते ही लोग मारने को टूट पड़े। सेवक भी इस कर्म्म में शामिल थे। शोर सुन कर हम लोग वहां गए उसको छुड़ाया और उनसे पूछा कि तुम ऐसा क्यों करते हो? तो उत्तर मिला कि इन गान्धी के आदमियों ने हम को बड़ा दुःख दिया है। हमने पूछा भाई क्या दुःख दिया है तो उत्तर मिला कि यह हमारी उन्नति नहीं चाहते, यह हमको अपनी सभा में आने से रोकते थे। हम अपने मन में हंसे

और उनको समझाया कि भाई गान्धी जी तो तुमको अपने बच्चों के समान ही प्यार करते हैं। यह लोग गांधीजी के आदमी नहीं हैं। यह तो अपनी मनमानी करते हैं, तुम क्रोध न करो। इससे भी बढ़ कर बात यह हुई कि उत्सव समाप्त करके जब हम लोग जाने लगे तो बहुत से आदमियों ने हमको आकर घेर लिया, हमने पूछा भाई क्या चाहते हो? उन्होंने हाथ जोड़ कर कहा कि महाराज हम, अपने घर किस प्रकार जावें? हमको भय लग रहा है। हमने पूछा भय किस बात का है तो यही उत्तर दिया कि गान्धीजी के चेले हिन्दु व मुसलमान हमको गांव में बसने न देंगे, कारण कि जब हम सभा में आए थे तो उन्होंने हमको यहां आने से मना किया था और स्टेशन तक आकर हमारा पीछा किया था और हम को पीटा था अन्त में जब किसी प्रकार भी हम उनकी बात न मानी तो उन्होंने नाराज़ होकर यह कहा था कि "अच्छा आकर तो हमारे ही गांव में बसोगे,,। हम उनकी ज़मीन में रहते हैं और सर्वथा उनके आधीन हैं। हम भी अफ़सोस के सिवाय क्या कर सकते थे उनको बात चीत से दिलासा देकर अपना पीछा छुड़ाया। शाहज़ादे को सभा में देखने की उन की उत्कंठा बनी ही रही। अब न वह असहयोग आन्दोलन है। और न सरकार को उनकी चाह है। न अछूत उद्धार का उतना शोर है और न वह सभा है। हां एक बात अवश्य है कि आश्रम में अछूत बालकों की संख्या पहले से द्विगुण है। (सम्पादक)

ऋषभदेव और बुद्धावतार

(ले० श्री लक्ष्मी चन्द्र जी कौसला अमृतसर।)

यह एक बड़ा विकट प्रश्न है और इसकी समुचित रूप से मीमांसा करने के लिए हमें शास्त्र और युक्ति दोनों का आधार लेने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। इसमें सन्देह नहीं कि धर्म के आंतरिक रूप में किसी काल में भी परिवर्त्तन नहीं हो सकता किन्तु उसकी गति और उपयोग में समय २ पर परिस्थिति के अनुसार भेद हुआ करता है। इसी लिए धर्म का निराकरण करते समय इसी पूर्वापर संदर्भ को

ध्यान में न लाकर साधारणतः मनुष्य मोह में पड़ जाते हैं। 'सामान्य, विशेष, आपद्' इत्यादि कई प्रकार की उसकी गति है यह बात एक ही उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी। एक बाजार में आग लगती है, उस समय जहां पानी से आग बुझाने का यत्न किया जाता है उस के साथ ही आग में जल रहे मकान के कुछ भाग को नष्ट करके अथवा शेष मकानों की रक्षा के विचार से उस सारे मकान को गिरा दिया जाता है। एक जहाज डूबने लगता है। उसका कप्तान उस थोड़े ही समय में मनुष्यों को बचाने के उद्देश्य से जहाज़ का सारा कीमती सामान तक भी पानी में फेंक देता है, वरन् यदि अत्यावश्यक हो तो स्त्रियों और बच्चों को बचा कर बाकी सब को फेंक देने की व्यवस्था करता है। उपरोक्त दोनों उदाहरणों में न मकान के गिराने वाला और न जहाज़ का कप्तान ही धर्म के विरुद्ध कहा जा सकता है। इसी प्रकार इस सचराचर जगत् के सूत्राधार, नियंता और धर्म के संस्थापक कि जिनकी इच्छा से वेद भगवान का प्रादुर्भाव होता है, धर्म की संस्थापना के लिए अनेक रूप से और विविध लीलाओं का विस्तार करते हुए अवतरित होते हैं।

यह अवतार अपने समय की परिस्थिति को देख कर ही धर्म की गति को बदला करता है। जिस प्रकार फौज का सरदार उसकी गति को आगे पीछे किया करता है। भगवान् बुद्ध और ऋषभ देव जी यद्यपि श्री कृष्णजी की भांति पूर्ण ब्रह्मावतार न थे, श्री कृष्णजी का काम भी वैसाही जिम्मेवारी का था। तथापि परशुराम अवतार की तरह वह भी अंशावतार माने जाते हैं। जिस प्रकार परशुराम जी ने अपनी परिस्थिति के अनुकूल क्षत्रियों का ध्वंस करने के लिये ही अवतार लिया और जब देखा कि श्रीराम जैसे सच्चे क्षत्रि पैदा होगए हैं तो अपनी कला को श्री राम के चरण कमलों में समर्पण करके स्वयं जंगलों को चले गये इसी प्रकार बुद्ध और ऋषभ देव ने जब यह देखा कि लोग वेद भगवान् की सच्ची आज्ञाओं का अनादर करके जीव हिंसा की पराकाष्ठा पर पहुंच रहे हैं तो उन्होंने ऐसे धर्म का प्रचार किया जो क्रमानुसार उनको वेद मार्ग पर लासके। धर्म के नाम से प्रचलित बाह्य आडम्बरों और वितंडावाद की ओर से जन साधारण का ध्यान हटा कर उस समय उन्होंने साधारण नैतिक और सदाचार मूलक धर्म के प्रचार पर ही ज़ोर दिया। जहाँतक खोजसेपता लगा है उपरोक्त अवतारों के मूल उपदेशों में न तो ईश्वरवादादि सिद्धान्तों का खण्डन है और न मंडन। प्रत्युत उनका यह आदेश था कि पहले लोग यम नियमादि और मनु महाराज के बताए दश धर्म के लक्षणों का ही पालन करें। तत्पश्चात् गहन विषयों की उहापोह करने की उनकी क्षमता होगी।

कलि-कौतुक।

(ले० पं० त्रिलोकीनाथ मैथिल।)

सच्चे की कुछ कदर नहीं है,
झूठे को सिर चढ़ते देखा।
गुनियों का है मोल नहीं,
नित निगुनी का दर बढ़ते देखा।
अन्यायी सुख लूट रहा है,
न्यायी को दुःख सहते देखा।
बदमाशों की चली बनी है,
सज्जन का घर ढहते देखा॥
अपने बल का वृथा गर्व कर,
मालिक से नहीं डरते देखा।
विषय भोग से बेसुध हो कर,
प्रभु को याद न करते देखा॥
पड़ कुसंग में अच्छे को भी,
पाप कुसंग में परते देखा।
तन धन धर्म नष्ट कर अपना,
विविध कष्ट से घिरते देखा।
बाहर से रहते बन ठन कर,
भीतर कालिख पोते देखा।
रखते बदन साफ पर न कभी,
मैले मन को धोते देखा।
पाकर यह मानव तन दुर्लभ,
वृथा सांस को खोते देखा।
हंस कर समय बिताने के दिन,
फूट फूट कर रोते देखा।
सीधे दिल वाले अमीर के,
द्वार ठगों का जुटते देखा।
बलवानों के जोर जुल्म से,
दुर्बल का दम घुटते देखा।
ख्याल नहीं अपने ऐबों का,
पर औगुन पै हंसते देखा।
लापरवाही से कितनों को,
विपद जाल में फंसते देखा।
बात बताते बड़े ज्ञान की,
आप विषय मदमाते देखा।
अपने हित की खबर न रख कर,
औरों को समझाते देखा।
धन असंख्य रहते कितनों को,
पर धन पर ललचाते देखा।
पर नारी को अङ्ग लगा कर,
हर्ष समुद्र समाते देखा।
चोर लुटेरों की सङ्गति से,
दुःख जाल में फंसते देखा।
हंसों की सुन्दर चालों पर,
बगुलों को नित हंसते देखा।
घर में शेर बने हैं बाहर,
चूहे से भी डरते देखा॥
पराधीनता पर अपने को,
सब से धन्य समझते देखा।
धर्म शील को कलि कोल्हू में,
पचते अपनी आंखों देखा॥
लोकनाथ फिर कभी कहूंगा,
कलि कौतुक जो आंखों देखा।

याज्ञवल्क्य का जनक को उपदेश

राजा जनक ने सन्यासी ब्रह्म वेत्ताओं के मिलने के लिये एक समय नियत कर रक्खा था। उस काल में जनक बैठे हुये किसी ब्रह्म ज्ञानी की प्रतीक्षा कर रहे थे कि इतने में याज्ञवल्क्य उनके समीप आ उपस्थित हुये। उनको देखकर राजा जनक ने आदर पूर्वक पूछा कि भगवन्! आप किस निमित्त पधारे हैं, क्या गौ लेने के लिये अथवा मेरे प्रश्नों का उत्तर देने के लिये? तदनन्तर याज्ञवल्क्य ने कहा कि हे राजन् जो कुछ तुझ को किसी ने बतलाया है वह सब सुनाओ। तब राजा जनक बोले कि हे भगवन्! शैलिनी शैलन के पुत्र जित्वा ब्राह्मण ने मेरे प्रति वाणी को ब्रह्म कथन किया है, और सन्त के उदङ्क ने प्राण को ब्रह्म बतलाया है और वर्कु ने मुझे कहा है कि चक्षु ब्रह्म है। हे भगवन्! भरद्वाज गोत्रोत्पन्न गर्धवी व्यसी ब्राह्मण ने मेरे प्रति उपदेश किया है कि श्रोत्र ही ब्रह्म है, और जवाला के पुत्र सत्य कामने निश्चय करके मनही ब्रह्म बतलाया है, और शकल के पुत्र विदग्ध ने निश्चय करके हृदय को ब्रह्म बतलाया है। तदनन्तर महर्षि याज्ञवल्क्य बोले कि हे राजन्! जिस प्रकार 'मातृ मान् पितृमान् आचार्यवान्' इन्हीं से शिक्षा पाया हुआ पुरुष कहाता है उसी प्रकार आपके प्रति वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, हृदय इनको ब्रह्म कथन किया है क्योंकि बिना कहे अथवा जीवन या चेष्टा बिना, बिना देखे, बिना सुने, बिना जाने, बिना भावना के क्या फल हो सक्ता है। आप को उन्होंने वागूरूप ब्रह्म का घर और शरीर भी कथन किया या नहीं?

तब राजा ने कहा कि मुझ को इनका उपदेश नहीं किया तत्पश्चात् याज्ञवल्क्य बोले यह तो इन वागादि ब्रह्म का पूर्ण उपदेश नहीं। तब महाराज बोले भगवन्! आप ही कृपा करके पूर्ण उपदेश करें। ऋषि बोले हे सम्राट! वाणी घर, आकाश शरीर, प्रज्ञा नाम वाला ब्रह्मबन्धु ज्ञापिनी अध्यात्मवायु सहित घ्राण इन्द्रिय यही प्राणप्रिय का आयतन और आकाश उसकी प्रतिष्ठा है यह प्राणरूप प्रिय नाम वाला ब्रह्म, चक्षु इन्द्रियगृह, आकाश शरीर, आदित्य सत्य नाम वाला ब्रह्म श्रोत्र आयतन, आकाश प्रतिष्ठा अनन्त नाम वाला ब्रह्म और मन आयतन नाम वाला ब्रह्म हृदय उस का घर और आकाश प्रतिष्ठा और स्थिति नाम वाला ब्रह्म आदि नामों से इस ब्रह्मकी जो उपासना करता है वह देवताओं में विराजमान् होता है उसको जीवन परित्याग नहीं करता सब

भूत उसकी रक्षा करते हैं तथा वह प्राणवित विद्वानों में मान पाता है। चक्षु उसको कभी कभी परित्याग नहीं करता, श्रवण शक्ति बुद्धि को करती हुई वह ज्ञानस्वरूप होता हुआ उसका हृदय बलवान् होता है और सब भूत उसकी रक्षा करते हैं। तब राजा जनक ने पांच सहस्र गौ और पांच हाथी जितने बड़े बैल याज्ञवल्क्य को भेंट किया तब याज्ञवल्क्य ने कहा कि मेरे पिता की यह आज्ञा थी कि जब तक शिष्य को पूर्ण ज्ञान नहीं जाय तब तक उससे कुछ न लेना चाहिये। तदन्तर राजा जनक अपने आसन से उठकर याज्ञवल्क्य से बोले कि हे भगवन् आपको मेरा नमस्कार हो और कृपा कर आप मुझको उपदेश कर कृतार्थ करें। तब ऋषि बोला कि हे सम्राट्! जिस प्रकार कोई पुरुष बड़ी यात्रा पूर्ण करने के लिये भूमि में रथादिकों का और जल में नावादिकों का आश्रय लेता है इसी प्रकार आप भी परलोक यात्रा को पूर्ण करने के लिये उपनिषदों के आश्रित हैं और वागादि विषयक ज्ञान से सम्पन्न हैं अर्थात् वेद, श्रुति उपनिषद् वा ऐश्वर्यवान् होने से हैं पूज्य हैं परन्तु मैं पूछता हूं कि आप देह त्यागान्तर वागादि ब्रह्मज्ञान विषय से कहां जायेंगे। राजा बोला भगवन्! मैं नहीं जानता आप ही जानते हैं सो कृपा कर बतलाइये कि मैं कहां जाऊंगा? तब ऋषि बोला कि सुन हम बतलाते हैं जहां तू जायगा। जागृत अवस्था में जो दाईं आंखगत पुरुष है इस का नाम इन्ध है देवता इन्ध नाम को छुपा कर इन्द्र कहते हैं क्योंकि देवता परोक्ष से प्यार और प्रत्यक्ष से द्वेष करते हैं और जो बाईं आंख में पुरुष है वह इन्द्र की इन्द्राणी कहाती है हृदय अन्तरवर्ति इन दोनों का शयन स्थान है और हृदयावर्ति रक्त पिण्ड अर्थात् खाद्य अन्न का अत्यन्त सूक्ष्म भाग दोनों का अन्न है, और हृदय के ऊपर का जाल अर्थात् लिपटा हुआ मांस ओढ़ने का वस्त्र है। हृदय से ऊपर की ओर जाने वाली नाड़ी इनकी संचारणी अर्थात् जागृत में आने के लिये सड़क है। जो हृदय के भीतर बाल के सहस्र भाग के समान अत्यन्त सूक्ष्महिता नाम वाली नाड़ी है इन्हीं के द्वारा इस समस्त देह में व्याप्त होता हुआ इनका भोग बनता है। इस कारण जीवात्मा विश्व की अपेक्षा सूक्ष्म आहार वाला है। दशों प्राण जिस में दशों दिशा हैं 'स एष नेति नेत्यात्मा अगृह्योनहि गृह्यतेऽशीर्यो नहि शीर्यतेऽसंगो नहि सज्जतेऽसितो न व्यथते नरिष्यति' इह नेति नेति शब्दों द्वारा बोधन किया आत्मा इन इन्द्रियों से गृहण करने योग्य नहीं कभी क्षीण नहीं होता, किसी से लिपायमान नहीं होता बन्धन से रहित दुःखी न होने से आनन्द स्वरूप और एक रस रहने से सन्मात्र कहा है। अर्थात् जो जागृत् स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाओं का अभिमानी है वही उपाधि से निर्मुक्त हुआ हुआ नेति नेति वाक्यों के

द्वारा कथन किया गया है। एक समय राजा जनक बोले कि हे याज्ञवल्क्य ! 'किं ज्योतिरयं पुरुषः' इस पुरुष की ज्योति क्या है अर्थात् किस प्रकार से जागृत में व्यवहार करता है 'आदित्य ज्योति रुम्राडिति' हे सम्राट ! आदित्य की ज्योति से व्यवहार करता है पुनः पूछा 'अस्तमित्यादित्यचन्द्रमस्य स्तमिते किं ज्योति रेवायं पुरुष इति' सूर्य चन्द्रमा के अस्त होने पर जब अंधेरे में कोई प्रकाश नहीं होता और आकाश बादलों से ढका हुआ होता है तब कहते हैं "वाचा,, तो वाणी रूप ज्योति से ही अपना व्यवहार करता है। तो फिर जनक बोले जब स्वप्न में यह कोई ज्योति नहीं रहती तब पुरुष किस ज्योति से स्वप्नावस्था का व्यवहार करता है। तदन्तर याज्ञवल्क्य बोले कि हे राजन् ! "आत्मैवास्य ज्योतिर्भवति" इस पुरुष का आत्मा ही ज्योति होता है "आत्मनैवायं ज्योतिषां आस्तेपल्यते कर्म कुरुते विपल्यति" आत्म ज्योति से यह कर्म करता है, बैठता है, जाता है और लौट आता है 'कतमात्मेति' राजा ने पूछा वह कौन आत्मा है। उत्तर "योऽयं विज्ञानमय प्राणेषु हृद्यान्तर ज्योतिः पुरुषः,, जो विज्ञानमय बुद्धि का स्वामी जिस के आश्रय से प्राण शरीर में चेष्टा करता है वही आत्मा स्वयं प्रकाश है वही बुद्धि की समीपता से उसके समान धर्मों को धारण करता हुआ इस लोक और परलोक में विचरता है। अन्तःकरण में सम्बन्ध से शब्दादि विषयों का अनुभव करता और कर्मेन्द्रिय से अनेक प्रकार की चेष्टा करता हुआ कभी स्वप्न को भोग कर जागृत में और जागृत को भोग कर स्वप्नावस्था में जाता है। जिस जिस शरीर को यह धारण करता हुआ जिस २ शरीर के साथ मिलता है उस २ के धर्मों को धारण करके अपने कर्मों का फल भोगता है और भोग प्रद कर्म के समाप्त होने पर पुनः जन्मान्तर को प्राप्त होता है।　　(क्रमशः)

वसन्त ।

धूम्रान् वसन्ताय लभते श्वेतान् ग्रीष्माय ।
कृष्णान् वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय
पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥

यजु० २४ । ११

वसन्त ऋतु में धुंधले, ग्रीष्म में श्वेत, वर्षा में काले, शरद् में हलके गुलाबी, हिम में पौष्टिक पदार्थों का और शिशिर में लाल वस्तुओं का सेवन करना चाहिये। आधुनिक वैज्ञानिक और चिकित्सक इन्हीं नियमों के आधार पर रंग बरंगी बोतलों में पानी भर कर रोगियों का इलाज करते हैं ॥

वसन्ते सर्वशस्यानां जायते पत्र शातनम् ।
मोदमानस्तु तिष्ठन्ति, यवाः कणिश शातने ।

द्रुमाः स पुष्पाः सलिलं सपद्मं,
स्त्रियः स कामा पवनः सुगन्धि ।
सुखा प्रदोषाः दिवसाश्च रम्या,
सर्वं प्रिये ! चारुतरं वसन्ते ॥

जो वृक्ष लताएं अब तक चिर विरहिणी पतिव्रता के समान शृंगार विहीन थीं वे ही अब प्रियतम ऋतुराज को पा नई कोंपलों, सुन्दर कलियों और सुगन्धित पुष्पों से सुसज्जित होगईं, तालाबों का जल जो शीत और पाले से नष्ट कर शोभा विहीन हो गया था वह भी अब कमल युक्त "पयसा कमलं कमलेन पयः" हो कर सुहावना प्रतीत होने लगा, निठुरा हुआ काम देव भी कामिनियों में जाग्रत हो उठा, और भारी पवन भी उत्तरायण सूर्य की रश्मियों से हल्का और गतिशील हो गुणात्मय से बहने लगा ।

होली ।

कैसे होरी खेलूं पिया संग सजनी,
दुबिधा रार मचाय रही रे ॥ टेक ॥
मान बूझ के सुनो भाई साधो,
सन्त जनों ने पीर दई रे ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
हमरी तो ऐसे ही बीत गई रे ॥ १ ॥
कपट कटोरा मधु विष भर भर,
तृष्णा मन को डराय रही रे ।
याही जीव को वश कर अपने,
हंस को काग बनाय रही रे ॥ २ ॥
कर के शृङ्गार कुमति बन बैठी,
भरम के घुंघरू बजाय रही रे ।
ये तीनों ताल मृदंग बजावें,
मैं मैं रागनी गाय रही रे ॥ ३ ॥

होली ।

साँवरे संग खेलो ना होरी,
पुरुषोत्तम संग खेलो ना० ॥ टेक ।
सास ननद दौरनियाँ जठनियाँ,
कैसे हि नाम धरोरी ।
समुझाई बरजी नहीं मानूं,
होनी होय सो होय री ।
मेरो मन हरि से लागो री ॥ १ ॥
सुनियो री मेरी अगड़ परौसन,
कहो अब कैसे करो री ।
बिन हरी फाग आग सी लगत है,
तन मन जात जरो री ।
प्राण नहीं मानत मोरी ॥ २ ॥
चलो सब हिल मिल कर बिनती करें,
शीश नाए कर जोरी ।
माने तो माने नहीं करें बरा जोरी;
पकड़ेंगी नवल किशोरी ।
ऐसो कहा सब से बड़ोरी ॥ ३ ॥
भक्ति की मांग प्रेम का सिन्दूरा,
सत की मेंहदी रचोरी ।
मन मन के कर माला करलो,
ज्ञान की गाति कसोरी ।

ध्यान की ओट भिलोरी ॥ ४ ॥
नक बेसर चून्दर पहनाओ,
केसर रंग कर बोरी ।
मल के गुलाल श्याम के मुख सूं,
निर्भय कहो होरी होरी ।
तभी जीवन भलोरी ॥ ५ ॥

होली ।

चलो नन्दलाल के संग में,
सकल होरी मचावेंगी ।
किसी विधि साथ छल बल कर,
पकड़ कर उसको बुलावेंगी ॥ टेक ॥
चलो सब साज आभूषण,
कनक पिचकारी लेले कर ।
चपल घनश्याम के ऊपर,
सकल जल्दी से धावेंगी ॥ १ ॥
छबीले लाल की आली,
पकड़ जिस वक्त पावेंगी ।
उठा कर केशरी सारी,
नई नारी बनावेंगी ॥ २ ॥
हमें जैसा नचाया है,
उन्हें भी हम नचावेंगी ।
पकड़ उस वक्त छोड़ेंगी,
कि जब हा हा करावेंगी ॥ ३ ॥
फुवारें रंग केसर की,
सकल हिल मिल उठावेंगी ।
उन्हें हम बोर कर रंग में,
यशोदा ढिग ले जावेंगी ॥ ४ ॥

यशोदा देख छवि झांकी,
बड़ा आनन्द मानेंगी ।
बहुत सत्कार से हम को,
ईर हंस के बुलावेंगी ॥ ५ ॥
उठो फट कर सकल भोरी,
यह अवसर फिर न पावेंगी ।
शर्मा रस भरी होरी,
निशि दिन खूब पावेंगी ॥ ६ ॥

होली ।

ब्रज में हरि होरी मचाई ॥ टेक ॥
बाजत ताल मृदंग झांझ डफ,
मुरली और सहनाई ।
उड़त गुलाल लाल भये बादल,
कछु नहीं देत दिखाई ॥
मानों मघवा झड़ लाई ॥ १ ॥
इत से चालि कुंवरि राधिका,
उतते कुंवर कन्हाई ।
खेलत फाग परस्पर हिल मिल,
शोभा बरणी न जाई ॥
नन्द घर बजत बधाई ॥ २ ॥
राधा सैन दई सखियन को,
झुण्ड झुण्ड उठ धाई ।
पकड़ो पकड़ो श्याम सुन्दर को;
यह कहीं भाज न जाई ॥
मानो नई नार बनाई ॥ ३ ॥
कित हैं तेरे पिता नन्द जू,
कित है यशुमती माई ।

छिन हैं तेरे सखा संग के,
छिन गये हल धर भाई ।
जो तेरे लेंगे छुड़ाई ॥ ४ ॥
धन गोकुल धन वृन्दावन,
धन्य है यमुना माई ।
राधा स्याम युगल जोड़ी पै,
सूरदास बलि जाई ॥
करो अपने मन चाही ॥ ५ ॥

भजन ।

दीनानाथ दयानिधि स्वामी,
कौन भांति मैं तुम्हें रिझाऊं ॥ टेक॥
श्री गंगा चरणों से निकसी,
सूचो नीर कहां से प्रभु लाऊं ।
काम धेनु कल्प वृक्ष तुम्हारे,
कौन सो पदारथ भोग लगाऊं ॥ १ ॥
चार वेद तुम मुख से भासे,
और कहा प्रभु पाठ सुनाऊं ।
अनहद बाजे बजत तुम्हारे,
ताल मृदंग क्या शंख बजाऊं ॥ २ ॥
कोटि भानु धारे मुख की शोभा,
दीपक ले प्रभु कहां दिखाऊं
लक्ष्मी थारी चरणन की चेरी,
कौन द्रव्य प्रभु भेट चढ़ाऊं ॥ ३ ॥
तुम तिरलोकी के करता हरता,
तुम्हें छोड़ प्रभु कौन पै जाऊं ।
सूर श्याम प्रभु विपत विदारन,
मनवांछित फल तुमही से पाऊं ॥४॥

भजन ।

सागर चढ़ गये आनन्द के,
दुःख बह गये पता न पाया ॥ टेक॥
जो इस सागर में बहते हैं,
सर्व अंग शीतल रहते हैं ।
इसी को मुनी मोक्ष कहते हैं,
जो ज्ञाता स्वर छंद के,
यह चौथा पद बतलाया ॥१॥
दुःख नाशन सुख रूप लहर है,
ज्ञान की लाखों छुटी नहर है ।
इसी में बेगम पुरी शहर है,
जहां दर्शन होवें मुकुन्द के ।
फिर पीछे रह गई माया ॥ २ ॥
कौन पिसाई बस के अन्दर,
भर पानी में रहयो बसन्दर ।
अब फिर क्या करे समन्दर,
उस चक मक मति मन्द के ।
जिनें अंगी से अंग छुपाया ॥ ३ ॥
जो इसमें असनान करे हैं,
कोटि यज्ञ तप दान करे हैं,
ऋषि मुनी रिद्ध बखान करे हैं ।
जो लखता इस छन्द के,
पद गंगा दास ने गाया ॥ ४ ॥

भजन।

दलाली लालन की,
म्हारे सतगुरु दी है बताय ॥ टेक
लाल लाल सब कोई कहें रे,
सब की गठरी लाल ।
खोल फाड़ देख्यो नहीं,
या विधि रह्यो कंगाल ॥ १ ॥
दिल्ली के बाजार में,
लाल ही लाल बिकाय ।
सुगरे सुगरे सौदा करते,
नुगरे फिर फिर जाँय ॥ २ ॥
लाल पड्यो मैदान में रे,
खलक उलांघे जाय ।
नुगरे ठोकर मारिया रे,
सुगरे न लियो उठाय ॥ ३ ॥
ज्यों मेंहदी के पात में रे,
लाली रही समाय ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो,
आवागमन मिट जाय ॥ ४ ॥

आशा ।

(ले० प्रो० रामकिशोर शर्मा 'किशोर')

कहा किसी ने "रम्य" प्रकृति !
क्यों करती अथक नर्तन ?
पल पल पर होता है तुम में,
क्यों नित नूतन परिवर्तन ?
कहा प्रकृति ने यह प्रियतम को ,
किया रिझाने का उपचार ।
इसीलिये हूं नित्य सजाती,
पल पल नये नये शृंगार ॥
नृत्य दिखा निःसीम अवधि तक,
यों ही उन्हें रिझाऊंगी ।
आशा है इस भांति किसी दिन,
प्रियतम से मिल जाऊंगी ॥
कहा भ्रमर ने रम्य कुसुम !
क्यों आकर खिले यहां एकान्त ।
छोड़ सभी उद्यान मनोहर
क्यों आया दुर्गम वन प्रान्त ?
कहा कुसुम ने क्यों बनता हूँ,
किसी देव मस्तक का भार ।
अथवा अपना हृदय छिदा कर,
बनता किसी हृदय का हार ॥
यहां मिली है मुझे मनोहर,
प्रकृति प्रिया की प्यारी गोद ।
आशा है झड़ कर अन्त में,
मिल जाऊंगा कभी समोद

संसार समाचार ।

अमेरिका के न्यूयार्क शहर में एक विशाल भवन एक सौ दस मंजिला बन रहा है जो १९२९ ई० के बसन्त तक बन कर तैयार हो जायगा । यह सड़क से १२०८ फुट ऊंचा होगा और ३० हजार आदमियों के लिये आफिस की जगह इस में होगी ।

यह हाल 'डेलीमेल' में न्यूयार्क के संवाददाता ने बताया है न्यूयार्क की सब से ऊंची इमारत से इस में ५६ मंजिलें अधिक होंगी। इसका नाम लारकिन टावर होगा और इस के बनवाने में ३६ लाख पौंड खर्च होगा। यह खर्च इस महल के बनवाने का है, इसकी जमीन के लिये जो नौ लाख पौंड दिये गये हैं वे अलग ही हैं। पचास हजार वर्ग फुट जमीन इसके वास्ते खरीदी गई है। इसके बनवाने वालों को वार्षिक छः लाख पौंड किराया वसूल होने की आशा है। इस के किरायेदारों को इतने ऊंचे तल्लों पर पहुंचाने के लिये इस में बड़ी तेजी से काम करने वाले साठ लिफ्ट (ऊपर उठाकर पहुंचाने के यंत्र) होंगे। इन में दो तो ऐसे होंगे जिन में बैठ कर आदमी एकदम ८२ वीं मंजिल पर पहुंच जायगा जहां से लोगों को १२० वीं मंजिल तक पहुंचाने के लिये चार और लिफ्ट होंगे। इस महल की तीन सब से ऊंची छतें तो केवल दृश्य दर्शकों के लिये होंगी। इसकी नींव सड़क की सतह से ४८ फुट नीचे खोदी जायगी और चट्टान पर रहेगी जिसकी मजबूती के लिये तरह तरह के प्रबन्ध किये जा रहे हैं।

गया से खबर आई है कि वहां के अस्पताल में एक चार महीने की बच्ची लाई गई जिस के पेट में दर्द था और पेट बेतरह फूला हुआ था। कोई उपाय न देख कर डाक्टर ने पेट पर आपरेशन किया। विधाता की अद्भुत लीला कि उस बच्ची के पेट से एक छोटा सा दूसरा बच्चा निकला जिस के सभी अङ्ग सम्पूर्ण थे। केवल दोनों हाथ और एक पैर नहीं थे।

मिट्टी की डिबरियों की रोशनी के बाद गैस ईजाद हुआ। गैस के बाद बिजली की बत्ती। अब एक डाक्टर का कहना है कि सन् १९५० तक मकानों की दीवारों और छतों से खुदबखुद रात में बनावटी रोशनी पैदा होगी।

अमेरिका के नारमन मिडोकान्ट ने एक अजीब छोटा गुब्बारा बना डाला है जो सिपाहियों के पीठ पर रहने वाले झोले पर आसानी से लगाया जा सकता है और उनके सहारे उड़ने की व्यवस्था हो सकती है, लोगों ने उड़ा कर देखा भी। वह आकाश में ८४० फीट ऊंचा जा सका और २॥ घंटे तक बराबर उड़ता रहा।

इङ्गलैंड के एक वैज्ञानिक ने एक ऐसे शीशे का आविष्कार किया है जो लचाने पर लच जाता है और टूटता नहीं। उसमें यह भी विशेषता है कि आग में वह जलता नहीं।

भक्ति के नियम।

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना गो रक्षण और उस के लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना। वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना। सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना। राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. अश्लील और अपरिचित विज्ञापन नहीं लिए जावेंगे।

६. लेखों को प्रकाशित करना और और घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नाम से और विज्ञापन व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

विषय सूची।

	विषय,	पृष्ठ.
१.	मंगलाचरण	१.
२.	भक्ति	५.
	(ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी)	
३.	शिव रात्री	११
	(ले० श्री० कार्त्तिकेय चरण मुख्योपाध्याय)	
४.	महात्माओं के वचन	१५.
५.	एक पुरानी कहानी	१८.
	(सम्पादक)	
७.	ऋषभदेव और बुद्धावतार	२२
	(ले० श्री० लक्ष्मीचन्द्र जी खोसला अमृतसर)	
८.	कलि-कौतुक	२४.
	(ले० श्री० त्रिलोकी नाथ मैथिल)	
९.	याज्ञवल्क्य का जनक को उपदेश	२५
१०.	वसन्त	२७.
११.	होली	२८.
१२.	आशा	३१.
	(ले० श्री० राम किशोर शर्मा 'किशोर')	
१३.	संसार-समाचार	३२.

बिना गुरु के सिद्धान्त कौमुदी।

भाषाफक्किका प्रकाश ॥

इस पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में तथा प्रश्नोत्तर के रूप में सिद्धान्त कौमुदी की गूढ़ फक्किकाओं को समझाया गया है। विद्यार्थियों के बड़े लाभ की पुस्तक है इस से विद्यार्थी लघु पढ़ कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकते हैं। मूल्य केवल ।।)

ज्ञानधर्मोपदेश।

इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र तथा धर्म का सार संगृहीत है और वेदान्त की उत्तम कविताओं का संग्रह है। मूल्य ~)।।।

वेदोपनिषत्।

इस पुस्तक में ईश, कठ, केन, मुण्डक, और माण्डूक्यादि उपनिषदों तथा वेदों के उत्तम २ मन्त्रों का अर्थ सहित संग्रह है। मूल्य ।~)

अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला।

इस पुस्तक में गीता और उपनिषदों से १०८ बहुत ही उत्तम श्लोकों का संग्रह है। यह नित्य पाठ करने की पुस्तक है। मूल्य ~)।

भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता।

इस पुस्तक में प्रथम मूल है तत्पश्चात् अन्वय तथा सरल संस्कृत में प्रत्येक मूल के पर्याय हैं फिर सरल हिन्दी भाषानुवाद है। यह गीता के जिज्ञासु तथा कथक्कड़ों के बहुत ही लाभ की पुस्तक है पृष्ठ संख्या ४२६ होने पर भी हमने भक्त जनों के लिये मूल्य केवल ।।=) ही रक्खा है शीघ्रता कीजिये केवल १००० ही प्रति हैं जिन के अति शीघ्र ही निकल जाने की आशा है।

सत्य शब्द संग्रह।

इस पुस्तक में महात्माओं की उत्तम २ वाणियों का संग्रह है, वेदान्त विषय की उच्च कोटि की कवितायें कवित्त तथा सवैये हैं। अन्त में विचार सागर है। यह भक्त जनों के नित्य पाठ की बड़ी ही उत्तम पुस्तक है मूल्य ।=)

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति भवन" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।